

दलितों के लिए उच्च शिक्षा : उपलब्धियां और चुनौती, एक ऐतिहासिक अध्ययन

डा. सन्त सरन

रिसर्च एसोसिएट

राजेन्द्र प्रसाद अकादमी, नई दिल्ली

सारांश

प्रस्तुत शोध-प्रपत्र में दलितों, वंचितों और समाज के वह तबके जिन्हें शिक्षा से वंचित रखा गया था। उनका आधुनिक समय में उच्च शिक्षा में भागीदारी का मूल्यांकन खासकर उत्तर प्रदेश के दलितों की स्थिति का। उच्च शिक्षा के मामले में आधुनिक भारत खासकर भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के बाद में शिक्षा में क्रमगत परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया का अवलोकन कर मूल्यांकित करने का प्रयास किया गया है। शोध-प्रपत्र में समाज के ब्रिटिश कालीन भारत में खासकर भारतीय समाज सुधारकों और ब्रिटिश अधिकारियों के द्वारा उच्च शिक्षण संस्थानों की स्थापना कर समाज को शिक्षित बनाने के प्रयासों को भी समाहित किया गया है। साथ ही भूमण्डलीकरण के दौर में आज के समय में दलित समाज में शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक और पारम्परिक परिवर्तन भी हुए हैं। उच्च शिक्षा का निजीकरण और बाजारीकरण के उत्तरदायी कारणों एवं शिक्षा में विभेदीकरण के कारणों को भी परीक्षण करने का प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्द : रूपान्तरण, शिद्दत, बाजारीकरण, सामाजीकरण, पारम्परिक, सूत्रपात, बाजारवाद।

बोधवाक्य “वसुधैव कुटुम्बकम्” विश्व एक परिवार है। विश्व में सभ्यताओं के उदय से ही भारतवर्ष की सभ्यता और संस्कृति का विशेष महत्व रहा है। चाहे वह लोकतांत्रिक मूल्यों के स्थापना की बात हो या फिर व्यक्तित्व विकाश की, दोनों ही मसलों में देश अग्रणी रहा है। छठी शताब्दी ईशा पूर्व, सोलह महाजनपद काल में मगध राज्य के उत्कर्ष के समय से ही शक्ति के चरमोत्कर्ष पर था। यह वह समय है जब देश में 10 गणतांत्रिक राज्यों का उदय हो चुका है। प्राचीन भारत विश्व के स्वर्णिम क्षितिज पर सदैव दैप्तिमान रहा है। यहाँ पर अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया। वैश्विक स्तर पर अपनी और देश की पहचान स्थापित की।

मानव विषम परिस्थितियों में भी, न्याय तथा मान-मर्यादा के लिए एकजुट होकर स्वतः संघर्ष करने को सदा तैयार होते हैं, इसलिए दलित लोग भी स्वयं राजनीतिक, आंदोलनात्मक और सांस्कृतिक मोर्चों पर अधिकाधिक सक्रिय होते गए हैं। ज्योतिबा फुले, इयोतीदास, पेरियार, अंबेडकर जैसे अनेक दलित नेताओं द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले दौर में संघर्ष एवं आंदोलन किए गए थे, वे आंदोलन और अन्य नए आंदोलन भी स्वतंत्रता के बाद उत्तर प्रदेश की बहुजन समाज पार्टी और कर्नाटक की दलित संघर्ष समिति जैसे समकालीन राजनीतिक संगठनों द्वारा चलाए जाते रहे हैं।

इस प्रकार दलितों के राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष काफी लंबे समय से चल रहा है। दलितों ने अनेक भारतीय भाषाओं, विशेष रूप से मराठी, कन्नड़, तमिल, तेलगू और हिंदी के साहित्य में उल्लेखनीय योगदान दिया है। हमारे देश का संविधान हर नागरिक को किसी भी धर्म को मानने आ अपनाने की पूरी स्वतंत्रता प्रदान करता है। साथ ही वह व्यवसाय करने की भी आजादी देता है। परन्तु फिर सैद्धान्तिक रूप से व्यवहारिक रूप बिल्कुल भिन्न है।

भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के बाद निजीकरण ने खुलकर पॉव पसारे जिसके फलस्वरूप अमीर और गरीब के बीच की खाई बड़ा किया। सार्वजनिक क्षेत्र में जहाँ चपरासी या समूह-4 के कर्मचारी और समूह-1 यानि अधिकारी के वेतन में अनुपात 1: 5 होता है। इसके विपरीत प्राइवेट में कर्मचारी और अधिकारी के वेतन में 1: 500 का अन्तर रहता है। अमीर को और अमीर साथ जरूरत मंद को दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं हो पाती है। भारत जैसे देश में उत्तरोत्तर निजीकरण की सफलता में सरकार में पर्याप्त मात्रा में हस्तक्षेप रहता है। प्राइवेटाइजेशन में कोई कर्मचारियों की यूनियन या संगठन नहीं होता है। देश मजदूर और कर्मचारियों की यूनियन मृतप्राय हैं जिसके कारण उद्योगपति मनमानी करते हैं।

हलॉकि केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा दलितों को उच्च शिक्षा में प्रतिनिधित्व देने के लिए प्रतिबद्ध है। परन्तु फिर भी दलितों पर्याप्त स्थान नहीं मिल पाते उनकी संख्या के मुताबिक। यहीं पर राज्य फेल हो जाता है। आज के समय में निजीकरण में मोटी फीस वसूलना कालेजों का व्यवसाय मात्र बनकर रह गया है। जहाँ अधिक से अधिक लाभ कमाना उनका उद्देश्य है। चूँकि हमारे देश में विभिन्न धर्मों को प्राश्रय संविधान देता है। वही राज्य यदि शिक्षा और रोजगार दिलाने में असमर्थ होता है। फिर तो मुस्लिम समाज के लोग मदरसा, मकतब में इस्लामी शिक्षा ग्रहण कर लेते हैं। शिक्षित, साक्षर या निरक्षर होने पर भी स्किल (कौशल) के माध्यम से अपने व्यवसाय हिन्दू समाज के समानान्तर मिष्ठान भण्डार, हलवाई, होटल, चाय, पान की दुकान, चाट भण्डार, हथौड़ा चलाना, बर्तन भण्डार, बाइक या कार की मरम्मत करना आदि बहुत प्रकार के कार्यों में संलग्न होकर परिवार की जीविका चलाते हैं। इससे इतर ये शासक जातियाँ थी जो कि सैकड़ों वर्षों तक राज किया इस पूरे महाद्वीप पर।

प्राकृतिक संसाधनों में उनकी भागीदारी है। कुछ पसमांदा मुसलमानों के पास जमीन-जायदाद न के बराबर है। इसके विपरीत देश की बहुसंख्यक जमात में शामिल दलितों के पास प्राकृतिक संसाधनों जैसे जंगल, जमीन और जायदाद न के बराबर है। वह कौशल विकास के मामले में न के बराबर है। केवल मेहनत-मजदूरी करके अपनी जीविका चलाने को मजबूर होते हैं। धनापूर्ति के अभाव में कोई व्यवसाय नहीं कर पाते साथ ही शिक्षा ग्रहण करने के बाद नौकरी न मिलने पर उच्च हिन्दू समाज के समानान्तर अपने व्यवसाय मिष्ठान भण्डार, हलवाई, होटल, चाय, पान की दुकान, चाट भण्डार, बर्तन भण्डार आदि भी जातिवाद के चलते नहीं कर पाते हैं। निजीकरण में कुछ उन लोगों के समूहों को ही फायदा है। जो धनाढ्य और तथाकथित उच्च जाति के हैं।

दलितों के साथ-साथ अन्य पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जनजाति, स्त्रियाँ एवं अन्यथा सूक्ष्म वर्ग भी सामाजिक-आर्थिक बहिष्करण के शिकार रहे हैं। इन वर्गों के अनवरत शोषण का एक परिणाम जहाँ यह हुआ कि ये राष्ट्र के विकास की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाते, वहीं राष्ट्र भी अपने निर्माण व विकास के क्रम में इन वर्गों में व्याप्त क्षमताओं, ज्ञान और कौशल का सम्यक् इस्तेमाल नहीं कर पाता।

हमारे चिंतक 'ऋग्वेद' में इस अवधारणा के सूत्र खोजते हुए 'विश्व पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम्' का उद्घोष करते हैं। एक विश्वग्राम का स्वप्न हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने देखा था। 'ग्राम स्वराज्य' का स्वप्न हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने देखा था। 'ग्राम स्वराज्य' की बात करते हुए उन्होंने कहा था, "मैं नहीं चाहता कि मेरा घर चारों ओर से दीवारों से घिरा रहे, न मैं अपनी खिड़कियों को ही कसकर बंद करना चाहता हूँ, पर ऐसी संस्कृति के किसी झकोरे से मेरे पाँव उखड़ जाए, यह मुझे मंजूर नहीं"।

1935 से 1990 के मध्य नौकरियों में जाति आधारित प्रतिनिधित्व¹

जाति	1935	1982	1990
कायस्थ	40%	7%	2%
अंग्रेज	15%	0%	0%
मुसलमान	35%	3.5%	1%
ब्राह्मण	3%	70%	75%
अन्य ठाकुर बनिया	7%	11.50%	10%
अनु. जाति, अनु. जनजाति	0%	6%	8%
पिछड़ा वर्ग/ओबीसी	0%	2%	4%

¹ नवभारत टाइम्स, 1 जुलाई 1990

उर्ध्वयुक्त तालिका विश्लेषण करने पर पता चलता है कि वंचितों का देश में 1935 से 1990 के मध्य नौकरियों में जाति आधारित प्रतिनिधित्व कितन कम है।

दलित आंदोलन

भारत में दलित आंदोलन की अवधारणा का आरम्भ गुलामी से मुक्ति की आकांक्षाओं से हुआ है। इस संदर्भ में दलित आंदोलन ने न केवल दलित मुक्ति का प्रस्ताव रखा बल्कि उत्पीड़न और दलन की पीड़ा के शिकार आमजनों की मुक्ति की राह भी खोली है।

वास्तव में दलित आंदोलन सत्ता हथियाने, किसी प्रांत पर कब्जा करने या किसी राज्य के विस्तार का आंदोलन नहीं है। यह दलित समाज द्वारा अपनी गरिमा की रक्षा, सामाजिक शोषण और उत्पीड़न से छुटकारा पाने का आंदोलन है।

देश के चहुँमुखी एवं नियोजित विकास में उच्च शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट स्थान है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उच्च शिक्षा का प्रसार तीव्र गति से हुआ है, जिसके फलस्वरूप विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। लोक कल्याण के निमित्त प्राथमिकता के आधार पर अविकसित तथा पिछड़े क्षेत्रों में विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों की स्थापना की गयी है एवं की जानी है।

लोकतांत्रिक राज्य की अवधारणा समाज के कमजोर लोगों जैसे विकलांग, अशक्त, दलित शोषित, निराश्रित वृद्ध और विधवाओं के सम्यक् विकास के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, रोजगार और मौलिक जरूरतें मुहैया कराना राज्य का दायित्व है। वंचित वर्गों को मुख्यधारा में लाकर उनका सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक विकास राज्यों ने आजादी से पहले एवं आजादी मिलने के बाद बखूबी पूरा करने का प्रयत्न किया है।

1991 में भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के सूत्रपात ने एक नये युग की शुरुआत हुई। भारत देश में आर्थिक परिवर्तन के दौर में देश की शिक्षा में भी परिवर्तन होने शुरू हो गये। कारपोरेट घरानों ने अंधाधुन्ध कालेजों का निर्माण करके मान्यता प्राप्त की। उत्तर प्रदेश भी इससे अछूता न रहा।

इसी दरम्यान प्रदेश में क्या देशभर में इस दौर में मंडल और कमंडल के अनेकानेक उग्र आन्दोलन हुए। उच्च शिक्षा प्राप्त करने को आतुर वंचित वर्गों के लोग शिक्षा के महत्व को थोड़े ही समझते थे। अतएव कुछ ही लोग उच्च शिक्षा में पारंगत थे। उन्हें समाज में वह स्थान प्राप्त था, जो उनकी पीढ़ियों में से किसी को नहीं मिला था। यह सब शिक्षा की वजह से सम्भव हुआ था।

दिशाहीन खामोशी में सहमें हुए दलित और वंचित समाज को विशुद्ध शिक्षित करके मुख्यधारा में लाकर समता के विमर्श को समाज का वह वर्ग जिसने हजारों वर्षों तक शिक्षा से वंचित रखा। देश एवं प्रदेश के नीतिकार, शिक्षाविद् जीवन्त और जांबाज बनायें।

भूमण्डलीकरण के दौर में “यह लगभग अटल सत्य की तरह मान लिया गया है कि विकास की एक ही संभव दिशा है—वह दिशा जो पश्चिमी औद्योगिकीकरण की रही है।” औद्योगिक प्रगति हासिल करने के लिए हमें कई प्राथमिकताओं, सिद्धांतों और लक्ष्यों की बलि चढ़ानी पड़ी है। विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को पूरी छूट दी गयी है। अब भारत में भी सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक और शैक्षणिक परिवर्तन विकसित राष्ट्रों स्थापित किये जाने लगे। जिसका असर यह हुआ कि शिक्षा का अन्धाधुन्ध बाज़ारीकरण किया गया।

वंचित, शोषित दलित और कमजोर वर्ग को पुनः सभी सुविधाओं से दूर करके ही हम आर्थिक विकाश का स्वप्न देख सकते हैं। पिछड़ो, दलितों और वंचितों को शिक्षा से दूर रखकर सरकारें विषमता को जन्म देंगी। बिना शिक्षा के वह मुख्यधारा से दूर हो जायेंगे। जो अशिक्षित समाज होगा, वह किसी भी अनुशासन को नहीं मानेगा।

“शिक्षा विनम्रता सिखाती है और विनम्र व्यक्ति अधिकारों के लिए लोकतांत्रिक तरीके अपनाता है। जबकि अशिक्षित व्यक्ति के लिए सिर्फ अधिकार जरूरी होता है, तरीका नहीं।” देश में सबसे अधिक वंचितों की आबादी उत्तर प्रदेश में ही निवास करती है। और उन्हें शिक्षित किये बिना हम समावेशी समाज का निर्माण नहीं कर सकते।

उत्तर प्रदेश में 2011 की जनसंख्या के अनुसार अनुसूचित जाति के कुल जनसंख्या के 4.6 प्रतिशत लोग जो साक्षर हैं। परन्तु किसी स्तर की शिक्षा ग्रहण नहीं की है। 33.4 प्रतिशत प्राईमरी के कम तक पढ़ाई की है। 27.1

प्रतिशत ने प्राथमिक स्तर की शिक्षा ग्रहण की है। इसके अलावा 18.5 प्रतिशत ने माध्यमिक स्तर की शिक्षा ग्रहण की है। 13.3 प्रतिशत ने 12 वीं तक शिक्षा ग्रहण कर पाये हैं। केवल 0.1 प्रतिशत तकनीकी और नॉन तकनीकी डिप्लोमा में शिक्षा ग्रहण की हैं। इसी के साथ केवल 3 प्रतिशत दलितों ने स्नातक या इससे उपर की शिक्षा ग्रहण की है। उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि दलितों में अभी भी शिक्षा के स्तर में अभी भी कितनी कमी है। जिसे अविलम्ब सुधारने की आवश्यकता है।

परम्परागत मूल्यों एवं मान्यताओं में परिवर्तन का प्रभाव शिक्षा तथा विशेष रूप से उच्च शिक्षा पर पड़ा है। शिक्षा ही मानव व्यक्तित्व के निर्माण तथा व्यक्ति के माध्यम से समाज एवं राष्ट्र के निर्माण एवं विकास की आधारशिला है। वैश्वीकरण के इस दौर में एक शक्तिशाली एवं सर्वांग विकसित राष्ट्र के निर्माण में सर्वाधिक निर्णायक भूमिका शिक्षा जगत की ही है। इन्हीं उच्च आदर्शों की पूर्ति के लिए समाज के युवा वर्ग को शिक्षण एवं प्रशिक्षण द्वारा उच्च कोटि का समाजोपयोगी प्राणी बनाया जाए। ऐसे में उच्च शिक्षा जगत की महत्वपूर्ण भूमिका दृष्टिगोचर होती है। उच्च शिक्षा विभाग से राष्ट्र एवं समाज की अपेक्षाएं निरन्तर बढ़ रही हैं।

एक केश अध्ययन में यह पता चला कि शोधार्थी द्वारा बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय के पास पिछले 5 वर्षों से चाय का स्टाल चलाने वाले व्यक्ति से जब यह पूछा गया कि आपके पास जो ये बड़ी इमारतें बनी हैं, इसमें क्या होता है। तो वह बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में बतता है कि यह महंगा विद्यालय है जो मेरे जैसे के बच्चों के लिए नहीं है। यहाँ दूर-दूर से आकर लोग पढ़ते हैं।²

श्री चन्द्रभान प्रासाद दलित विचारक एवं विशेषज्ञ के अनुसार “विगत आधी सदी में भारत इतना बदल गया, जितना दो हजार साल में नहीं बदला जाहिर है कि डा० बी. आर. अम्बेदकर के लिखे संविधान, टेक्नोलॉजी शहरीकरण, भूमणलीकरण ने दलित मुक्ति का दरवाजा खोल दिया है।

“सामाजिक समानता के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि सभी के लिए विकास के समान अवसर हों। उच्च शिक्षा विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। अतः इसमें सभी को समान अवसर प्राप्त होना आवश्यक है। भारत में सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े लोगों को विशेष संरक्षण (सीटों का आरक्षण छात्रवृत्ति आदि) दिये गये हैं। ये अपेक्षा की गयी कि इससे उन वर्गों के लोग उच्च शिक्षा में अधिकाधिक हिस्सेदारी कर सकेंगे। उच्च शिक्षा के माध्यम से सामाजिक संरचना में निचले समूह के शिक्षित लोग सामाजिक रूप से गतिशील बनेंगे। इस प्रक्रिया से समतामूलक समाज बन सकेगा।”³

ड्यूक एलिंगटन के अनुसार, “हर समस्या आपको एक अवसर देती है भरसक यत्न कर दिखाने का।” शिक्षा के द्वारा ही समाज में वैचारिक पृष्ठभूमि पनपती है। सर्वांगीण समाज में प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना हेतु शिक्षा महत्वपूर्ण तत्व है। आज 21वीं सदी में उच्च शिक्षा के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं, जिनसे निपटकर हम भावी पीढ़ी के साथ न्याय कर सकते हैं। ऐसा करने में यदि हम नाकाम हुए तो पीढ़ियाँ इसके लिए हमें उत्तरदायी ठहराएंगी। यदि संसदीय नीतियों में शिक्षा के गुणवत्तापूर्ण रोजगारपरक बनाये जाने एवं मुख्यतः क्रियान्वयन पर ध्यान नहीं दिया जाता है, तो युवाओं में अवसादग्रस्तता, हतोत्साहित होकर नकारात्मक गतिविधियों में संलिप्तता बढ़ सकती है। आज पूरी दुनिया में शिक्षा को अनिवार्य और सशक्त बनाने के लिए नित नए प्रयोगों के साथ-साथ शिक्षा की प्रणाली एवं उसके स्वरूप में परिवर्तन किए जा रहे हैं। हमारे देश में भी आजादी के बाद अनेक शिक्षा नीतियाँ बनीं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के बाद 2016 राष्ट्रीय शिक्षा नीति एन.डी.ए. के समय में आयी। जिसमें उच्च शिक्षा को गुणवत्तापरक और रोजगारपरक बनाने के लिए पहल शुरू हो गई है। शिक्षण संस्थानों को सीधा उद्योग से जोड़ने, क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने, शोध कार्यों को बढ़ावा और ऑनलाइन कोर्स जैसे बिंदुओं को गंभीरता से लागू किया जाएगा ताकि नई पीढ़ी को ऐसी शिक्षा मिल सके जो उनको रोजगार उपलब्ध करा सके।

देश में उच्च शिक्षण संस्थानों की कमी नहीं है। बड़े-बड़े शिक्षण संस्थान हैं, लेकिन उसके बावजूद देश के शिक्षण संस्थान दुनिया के सर्वश्रेष्ठ 200 संस्थानों के बीच जगह बनाने में नाकाम साबित होते हैं।

² सक्षात्कार के दौरान

³ कुमार, अरुण, (सम्पादित) 2015, आधुनिक शिक्षा एवं दलित, रावत पब्लिकेशन, जयपुर। पृ० सं० 4

एक राष्ट्र के तौर पर हमने अपनी आर्थिक नीति के उपकरण के रूप में उदारीकरण को अपनाया है। इसका यह अर्थ है कि अब हमारे बाज़ार खुल चुके हैं और हमारे घरेलू उत्पादों को विश्व अर्थव्यवस्था में सहभागिता के कारण प्रतियोगिता करने की जरूरत है फिर चाहे वह हमारे पड़ोसी बाज़ार ही क्यों न हो। इस वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में हमारी श्रमशक्ति के सामर्थ्य और हमारे उत्पादों की गुणवत्ता को अंतर्राष्ट्रीय मानदण्ड पूरा करने की आवश्यकता है। इस कार्य के लिए स्वयं को तैयार करने में, समाज का कोई अन्य तंत्र उतना कठिन कार्य नहीं करता जितना शिक्षा।

नीचे दी गई तालिका विश्लेषण करने पर पता चला है कि वंचितों की देश में सकल नामांकन प्रतिशत कितनी कम है।

नेशनल सैम्पल की गणना के आधार पर उच्च शिक्षा में सकल नामांकन दर की स्थिति⁴ (प्रतिशत में)

संवर्ग	61वां चक्र	64वां चक्र (2007-08)	66वां चक्र (2008-09)
अनु. जाति	8.07	11.05	12.2
अनु. जनजाति	8.4	7.7	9.7
अन्य पिछड़ी जातियां	11.5	14.7	18
अन्य	22.5	26.6	27.5
कुल	14.2	17.2	18.8

“किसी भी समाज की शिक्षा की दिशा उस समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, स्वास्थ्य इत्यादि की दशा पर निर्भर करती है। साथ ही किसी भी समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं स्वास्थ्य की दशा ही शिक्षा की दशा पर निर्भर करती है।”⁵

अनेक शोध अध्ययनों के निष्कर्ष बताते हैं कि अधिकांश दलित विद्यार्थियों के पास शिक्षा-अध्ययन के लिए अनुकूल वातावरण का अभाव रहता है इस कारण यह अध्ययन में पिछड़ जाते हैं। (सिंह, टी0पी0 व अन्य, 1974) राज्य द्वारा इन जातियों को विशेष शैक्षिक सुविधाएं दिये जाने पर भी इनके तथा अन्य समाज की जातियों के बीच शैक्षिक स्तर में पर्याप्त असमानता है और प्रगति की गति भी धीमी है। (डिसूजा, 1980) राष्ट्रीय स्तर पर दलितों की शैक्षिक प्रगति और समस्याओं पर किए गये सर्वेक्षणों से पता चला है कि कुछ विकास तो जरूर हुआ है, परन्तु शैक्षिक विकास के सम्बन्ध में अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है।

“उत्तर प्रदेश में सबसे कम शिक्षित जनसंख्या श्रावस्ती और बलरामपुर जिलों में क्रमशः 40.9 एवं 40.4 प्रतिशत अनुसूचित जाति के लोग ही शिक्षित हैं। जबकि शिक्षा के मामले में प्रदेश के प्रथम स्थान पर गाजियाबाद और द्वितीय स्थान पर इटावा जिलों में क्रमशः 73.4 एवं 72.4 प्रतिशत अनुसूचित जाति के लोग शिक्षित हैं।”⁶

वैश्विक परिवर्तन : भारत में शिक्षा पर प्रभाव

एक राष्ट्र के तौर पर हमने अपनी आर्थिक नीति के उपकरण के रूप में उदारीकरण को अपनाया है। इसका यह अर्थ है कि अब हमारे बाज़ार खुल चुके हैं और हमारे घरेलू उत्पादों को विश्व अर्थव्यवस्था में सहभागिता के कारण प्रतियोगिता करने की जरूरत है फिर चाहे वह हमारे पड़ोसी बाज़ार ही क्यों न हो। इस वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में हमारी श्रमशक्ति के सामर्थ्य और हमारे उत्पादों की गुणवत्ता को अंतर्राष्ट्रीय मानदण्ड पूरा करने की आवश्यकता है।

⁴ कुमार, अरुण, (सम्पादित) 2015, आधुनिक शिक्षा एवं दलित, रावत पब्लिकेशन, जयपुर। पृ0 सं0 4

⁵ कुमार, अरुण, (सम्पादित) 2015, आधुनिक शिक्षा एवं दलित, रावत पब्लिकेशन, जयपुर। पृ0 सं0 61

⁶ स्टैटिकल डायरी, उत्तर प्रदेश, 2013, पृ0 संख्या-241

इस कार्य के लिए स्वयं को तैयार करने में, समाज का कोई अन्य तंत्र उतना कठिन कार्य नहीं करता जितना शिक्षा। हम देख सकते हैं कि माँग के अनुरूप उच्च शिक्षा के विकास स्वरूप में विभिन्न वैश्विक प्रवृत्तियाँ हैं। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं : विशिष्ट से सामूहिक और फिर सार्वभौमिक उच्च शिक्षा में परिवर्तन, निजी सेक्टर के प्रावधान का आविर्भाव तथा विभिन्न तकनीकों का अभिसरण जो ज्ञान का विस्तार करने और इसमें बड़े पैमाने पर छात्रा वर्ग को शामिल करने के लिए नए द्वार खोलती है। स्थानान्तरणशील जनसांख्यिकी सहित इन प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा का अंतर्राष्ट्रीयकरण हो रहा है। इसके कारण संस्थाओं, सरकार व इसकी नियामक शाखाओं के बीच संबंधों में बदलाव हो रहा है।

अनेक शोध अध्ययनों के निष्कर्ष बताते हैं कि अधिकांश दलित विद्यार्थियों के पास शिक्षा-अध्ययन के लिए अनुकूल वातावरण का अभाव रहता है इस कारण यह अध्ययन में पिछड़ जाते हैं। (सिंह, टी0पी0 व अन्य, 1974) राज्य द्वारा इन जातियों को विशेष शैक्षिक सुविधाएं दिये जाने पर भी इनके तथा अन्य समाज की जातियों के बीच शैक्षिक स्तर में पर्याप्त असमानता है और प्रगति की गति भी धीमी है। (डिसूजा, 1980) राष्ट्रीय स्तर पर दलितों की शैक्षिक प्रगति और समस्याओं पर किए गये सर्वेक्षणों से पता चला है कि कुछ विकास तो जरूर हुआ है, परन्तु शैक्षिक विकास के सम्बन्ध में अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है।

मुंगेर, भालचन्द्र ने “एजुकेशन : द ओनली की टु दलित प्रोग्रेस” विषय पर शोधपत्र को दलित कान्फ्रेंस में प्रस्तुत किया। आपने बताया कि दलितों के विकास में शिक्षा एक चाबी की तरह भूमिका का निर्वाह करती है। उन्होंने अम्बेडकर की तरह शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का हथियार बताया और साथ ही साथ दलित छात्र-छात्राओं को, दलित समुदाय को, अन्तर्राष्ट्रीय दलित संगठन आदि को दलित समाज में शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने के लिए सुझाव भी दिए।

प्रसिद्ध साहित्यकार, आलोचक और दलित चिंतक श्री मुद्राराक्षस जी के अनुसार भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने दलित समाज को झकझोर दिया है। नकारात्मक प्रभाव बहुत पड़े हैं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में तो बहुत ज्यादा हानि हुई है। उनके साहित्य और समाज पर व्यापक नकारात्मक प्रभाव देखने को मिला है। निजीकरण के द्वारा नौकरियों में उन्हीं वर्गों का एकाधिकार बन गया। जो पहले से काबिज थे।

आज पूरी दुनिया में शिक्षा को अनिवार्य और सशक्त बनाने के लिए नित नए प्रयोगों के साथ-साथ शिक्षा की प्रणाली एवं उसके स्वरूप में परिवर्तन किए जा रहे हैं। हमारे देश में भी आजादी के बाद अनेक शिक्षा नीतियाँ बनीं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के बाद 2016 राष्ट्रीय शिक्षा नीति एन.डी.ए. के समय में आयी। जिसमें उच्च शिक्षा को गुणवत्तापरक और रोजगारपरक बनाने के लिए पहल शुरू हो गई है। शिक्षण संस्थानों को सीधा उद्योग से जोड़ने, क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने, शोध कार्यों को बढ़ावा और ऑनलाइन कोर्स जैसे बिंदुओं को गंभीरता से लागू किया जाएगा ताकि नई पीढ़ी को ऐसी शिक्षा मिल सके जो उनको रोजगार उपलब्ध करा सके।

निष्कर्ष :-

निष्कर्षतः भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया जिस सीमा तक आगे बढ़ चुकी है उसे रोकना तो नहीं जा सकता, लेकिन उसे राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर जनाकांक्षाओं के अनुरूप अवश्य बनाया जा सकता है। इस दृष्टि से वैश्वीकरण के सामाजिक पहलू पर भी विचार किया जाना चाहिए। उत्तर प्रदेश के दलित युवाओं को उच्च शिक्षा के प्रति नकारात्मक रवैया रहता है जिन छात्रों और उनके अभिभावकों को रोजगार नसीब नहीं होता है। वैश्वीकरण के सामाजिक पहलू का सम्बन्ध अनिवार्य रूप से जीवन स्तर, आय, रोजगार, संस्कृति एवं इन सबसे ऊपर राष्ट्र की अपनी स्वयं की पहचान से जुड़ा हुआ है। सामाजिक तौर पर लोगों को यह महसूस नहीं होना चाहिए कि उनकी संस्कृति का अतिक्रमण किया जा रहा है। भारत में लोगों में यह आम धारणा घर करती जा रही है कि वैश्वीकरण का प्रभाव उनकी परम्परागत सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाओं, जैसे परिवार, विवाह, बाजार और सत्ता एवं विधायिका के प्रतिष्ठापन के लिए एक गम्भीर खतरा व चुनौती है।

1. उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे या कर चुके सभी अभिभावकों अपने बच्चों पर सरकारी नौकरी मिलने का दबाव नहीं देना चाहिए।

2. अभिभावक और छात्र स्वयं अपनी क्षमता और रुचि के अनुरूप ही बिषय और व्यवसाय का चयन करना चाहिए।
3. आर्थिक रूप से कमजोर दलित और वंचित समाज को पश्चिमी देशों की भाँति पढ़ाई के साथ कमाई (Learning with Earning) जैसी व्यवस्था अपनानी चाहिए।
4. उत्तर प्रदेश ही नहीं अपितु पूरे देश सभी शिक्षित व्यक्तियों के लिए उद्यमिता के विकास को सरकार एवं समाज दोनों को मिलकर प्रभावी कदम बढ़ाना चाहिए।
5. सरकारी नौकरी के प्रति समाज में व्याप्त सम्मान और प्राइवेट नौकरी एवं खेती करने वाले अन्य जैसे कार्य को सम्मान की दृष्टि से न देखने जाने पर, दोनों के बीच की खाई को दूर करना चाहिए।
6. निजीकरण में भी समाज के वंचित समाज को रियायत या आरक्षण के माध्यम से पर्याप्त स्थान देना चाहिए। या फिर उनके लिए स्थान रिजर्व होना चाहिए।
7. निजी कालेजों और विश्वविद्यालयों को अपने संस्थान में आरक्षण का प्राविधान को सरकारें मजबूती से लागू करें।
8. दलितों को देश से बाहर निकलकर भी शिक्षा और रोजगार के अवसर हेतु सरकार को और ज्यादा संख्या में भेजना चाहिए।
9. प्रधानमंत्री कौशल भारत योजना में हर दलित युवा को प्रशिक्षित करना चाहिये।

संदर्भ सूची:-

1. अग्रवाल, जे0सी0, 1991, "भारतीय शिक्षा पद्धति संरचना और समस्याएँ", आर्य बुक डिपो, 30, नाईवाला, करोलबाग, नई दिल्ली।
2. अग्निहोत्री, रवीन्द्र, 2001, आधुनिक भारतीय शिक्षा – समस्याएं और समाधान, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
3. आहूजा, राम, 2016, सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
4. इलिया, कांचा, 1996, व्हाइ आई एम नॉट ए हिन्दू : ए शूद्र क्रिटिक ऑफ हिन्दुत्व फिलॉस्फी, कल्चरल एंड पॉलिटिकल इकोनॉमी, कोलकाता: समय।
5. ओमवेत, गेल, 2010, "दलित विजन" प्रथम संस्करण, ओरियन्ट ब्लैकश्वान प्रकाशन, हैदराबाद।
6. ओमवेत, जी., 1976, कल्चरल रिवोल्ट इन ए कॉलोनिअल सोसायटी, मुंबई: साइंटिफिक सोशलिस्ट एजुकेशन ट्रस्ट।
7. ओमवेत, जी., 1994, दलित्स एंड द डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन: डा. अंबेडकर एंड द दलित्स मूवमेंट इन कॉलोनिअल इंडिया, नयी दिल्ली: सेज।
8. काबरा, कमल नयन, 2005, "भूमण्डलीकरण : विचार, नीतियाँ और विकल्प", प्रथम संस्करण, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
9. काबरा, कमल नयन, 2008, भूमण्डलीकरण के भँवर में भारत, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
10. किरण चाँद, "शिक्षा दार्शनिक परिप्रेक्ष्य" प्रथम संस्करण, 2006, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
11. कामत, ए.आर., 1985. एजुकेशन एंड सोशल चेंज इन इंडिया, मुंबई : सोमाया पब्लिकेशंस।
12. कुमार, अरुण, (सम्पादित) 2009, उदारीकरण, भूमण्डलीकरण एवं दलित, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
13. कुमार, अरुण, (सम्पादित) 2015, आधुनिक शिक्षा एवं दलित, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।

14. कुमार, कृष्ण, 1991. द पॉलिटिकल एजेंडा ऑफ एजुकेशन: ए स्टडी ऑफ कॉलोनियालिस्ट एण्ड नेशनलिस्ट आइडियाज़, नई दिल्ली: सेज।
15. कुमार, अनिल, 2012, उदारीकरण और आर्थिक विकास, महेन्द्र बुक कम्पनी, गुडगांव।
16. गंगाराडे के. डी., 2000, एक अछूत युवक की कहानी, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली।
17. गुप्ता आशा, 2011, "उच्चतर शिक्षा के बदलते आयाम" प्रथम संस्करण, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
18. गुप्ता, डॉ० दीप्ति, 2010, दलित आन्दोलन और सामाजिक न्याय, राधाकृष्ण पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
19. घुर्ये, जी०एस०, 1961, कास्ट, क्लास एण्ड आक्यूपेशन, पॉपुलर बुक डिपो, बाम्बे।
20. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, 2008, नंदीग्राम, मीडिया और भूमंडलीकरण, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली। चंदन, संजीव, एवं अनीता भारती, 2017, दलित स्त्रीवाद, द मार्जिनलाइज्ड पब्लिकेशन, दिल्ली।
21. कुमार, अरुण, (सम्पादित) 2015, आधुनिक शिक्षा एवं दलित, रावत पब्लिकेशन, जयपुर। पृ०सं० 4
22. भारत की जनगणना, 2011
23. डॉ० रामविलास भारती, शोध पत्र "बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में दलित समाज : एल० इलैयापेरुमल रिपोर्ट के आलोक में", *इतिहास दृष्टि* : दिसम्बर 2009, प्रकाशक, सैयद नजमुल रज़ा रिजवी, प्रकाशन, दी०द०उ० गोरखपुर विश्वविद्यालय।
24. सुधीर हिलसायन, "दलितों के राजनीतिक अस्तित्व के 75 साल व राजनीतिक पहचान के 15 साल" लेख, *माया युग* मासिक पत्रिका, सितम्बर 2007।
25. डॉ० कविराज "उत्तर प्रदेश में दलित नेतृत्व का उभार", शोध पत्र, *ए जर्नल ऑफ सोशल साइंस*, वाल्यूम-3, नं० 1, जनवरी-जून 2006 में लखनऊ द्वारा प्रकाशित।
26. डॉ० विवेक कुमार, "दलित समुदाय और सामाजिक परिवर्तन", (लेख) 'हंस', मासिक पत्रिका, अगस्त 2004।
27. कन्हैयालाल चंचरीक, "आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन", प्रथम संस्करण 2003, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
28. कन्हैयालाल चंचरीक, "दलित आइडेंटि हिस्ट्री एण्ड ट्रेडीशन" संस्करण 2002, ओशन बुक, नई दिल्ली।
29. चमनलाल, प्रो०, "दलित साहित्य एक मूल्यांकन", 2009 संस्करण, प्रकाशक; राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली।
30. चंचरीक, के० एल०, "भारतीय दलित आन्दोलन की रूपरेखा", 2007 संस्करण, प्रकाशक : यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
31. चंचरीक, कन्हैया लाल, "भारत में दलित आंदोलन", भाग-दो, स्त्रीस्ट बुक्स, नई दिल्ली, 2015.
32. चंचरीक, कन्हैया लाल एवं सरोज प्रसाद, "भारतीय दलित जाति कोष", भाग-दो, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2012.
33. चानना, देवराज, "प्राचीन भारत में दास प्रथा", प्रथम संस्करण 1989, प्रकाशक; हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
34. चोपड़ा, पी०एन०, पुरी, बी०एन०, दास, एम०एन०, "भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास" 2004, मैकमिलन प्रकाशन, नई दिल्ली।

35. चौधरी, प्रसन्न कुमार, श्रीकान्त, "बिहार में दलित आन्दोलन 1912-2000" द्वितीय संस्करण, 2005, प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
36. डॉ० निरंजन कुमार, "हिन्दी नवजागरण एवं दलित चेतना" आलेख 'दलित साहित्य', 'वार्षिकी', 2005, सम्पादक 'जयप्रकाश कर्दम'।
37. डी०पी० वरुण, "समतामूलक समाज के महान शिल्पी बाबू जगजीवन राम" 'अम्बेडकर इन इंडिया' हिन्दी मासिक, लखनऊ।
38. मीरा कुमार (सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, भारत सरकार) द्वारा "डॉ० एनी बेसेंट स्मृति व्याख्यानमाला," महिला अध्ययन एवं विकास केन्द्र, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, में 29 अक्टूबर 2007 को दिया गया भाषण।
39. थोरात, सुखदेव, 2011, भारत में दलित सामान्य लक्ष्य की खोज, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
40. थोरात, सुखदेव, 2017, भारत में दलित एक समान नियति की तलाश, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
41. दुबे, अभय कुमार, 2014, "आधुनिकता के आइने में दलित", संस्करण वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
42. दुबे, अभय कुमार, (सम्पादित), 2006, भारत का भूमण्डलीकरण, वाणी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
43. पुनियानी, राम, 2018, कास्ट, हिन्दुत्वा एंड दलित्स, कल्पाज पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
44. प्रिया, नीरज, 2007, आरक्षण नीति और शिक्षक, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
45. प्रसाद चन्द्रभान, 2008, "मेरिट, मण्डल और आरक्षण", प्रथम प्रकाशन, प्रकाशक गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली।
46. रमन बिहारी लाल एवं कृष्णकान्त शर्मा, 2012, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ।
47. श्रोत्रिय, प्रभाकर, 2015, भूमण्डलीकरण के दौर में चुने हुए निबंध, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
48. शर्मा, डी० सी०, 2012, "बीसवीं शताब्दी का विश्व", प्रथम संस्करण अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
49. शाह, घनश्याम, 2009, "भारत में सामाजिक आन्दोलन," संस्करण, प्रकाशक, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
50. शाह घनश्याम, (सम्पादन) 2001, दलित आईडेन्टिटी एंड पॉलिटिक्स, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
51. शर्मा, रामशरण., 1979, शुद्रों का प्राचीन इतिहास, दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली।
52. सांकृत्यायन, राहुल, 1954, "तुम्हारी क्षय", प्रथम संस्करण किताब महल पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
53. सांकृत्यायन, राहुल, 1956, "दिमागी गुलामी", प्रथम संस्करण किताब महल पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
54. सिन्हा, सच्चिदानन्द, 2003, "भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ," पहला संस्करण वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
55. सिंह, प्रेम, 2008, "उदारीकरण की तानाशाही," प्रथम संस्करण राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
56. सिंह, चन्द्रजीत, 2018, शिक्षा की बदहाली : समस्या एवं समाधान, आसरा, कैमूर बिहार।
57. सिंह, जे० पी०, 2019, आधुनिक भारत का समाज, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
58. हबीब, इरफान, 2012, "भारतीय इतिहास में जाति और मुद्रा", संस्करण पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली।
59. स्वरूप देवेन्द्र, 2004, जाति-विहीन समाज का सपना, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली।